

महावीर – वाणी

१. धर्म का मूल दया है और दया का अर्थ प्राणियों पर अनुकंपा (दूसरों को दुःखी देखकर कंपित होना) करना है। बाकी के सब गुण दया की रक्षा के लिए ही हैं।
२. जो अहिंसा, संयम और तपरूप है वह धर्म है। ऐसे धर्म से ही सर्वोच्च कल्याण होता है। जिस मनुष्य का मन सदा ऐसे धर्म में लगा हुआ है उसको देवता भी प्रणाम करते हैं।
३. वस्तु का स्वभाव धर्म है। क्षमादि परिणाम भी दस प्रकार का धर्म है। तीन रत्नों का समूह भी धर्म है तथा जीवों की रक्षा करना भी धर्म है।
४. घर, पुर, परिजन, धनिकों का धन, पुत्र, बांधव और सहायक – ये जाते समय जीव के साथ नहीं जाते। एक धर्म ही साथ जाता है।
५. ज्ञान का उद्योत (प्रकाश) ही सच्चा प्रकाश है, क्योंकि उसके प्रकाश की कहीं रुकावट नहीं है। सूरज भी उसकी समता नहीं कर सकता।
६. इस लोक में जितने प्राणी हैं, चाहे वे त्रस हों अथवा स्थावर, उन्हें जान-बूझकर अथवा बिना जाने प्रमादवश न स्वयं मारें और न दूसरों द्वारा उनका घात करावें।

७. किसी अन्य जीव का वध स्वयं अपना ही वध है तथा अन्य जीवों की दया अपने पर ही दया है। अतएव हिंसा का विष व कण्टक के समान त्याग करना चाहिए।
८. जिस प्रकार अणु से छोटी कोई वस्तु नहीं और आकाश से बड़ा कोई पदार्थ नहीं, उसी प्रकार समझ लो कि अहिंसा के समान संसार में कोई महान व्रत नहीं है।
९. जिस प्रकार समस्त लोक में समस्त पर्वतों से ऊँचा मेरु पर्वत है उसी प्रकार समस्त शीलों और व्रतों में अहिंसा को सर्वश्रेष्ठ जानना चाहिए।
१०. सदैव प्रमादरहित होकर असत्य भाषण से बचते रहना चाहिए, वही बात कहना चाहिए जो सत्य हो और हितकारी हो। यह दुष्कर कार्य तभी सम्भव है जब सदा सावधान रहा जाए।
११. जो हिंसाकारक वचन नहीं बोलता, जो कर्कश वचन नहीं बोलता, जो निष्ठुर वचन भी नहीं बोलता और जो गुह्य वचन नहीं बोलता उसके सत्याणुव्रत होता है।
१२. चोर के हृदय में न कोई दया होती है, न लज्जा, और न विश्वास। जब धन हड़पने की बात आती है तो ऐसा कोई दुष्कृत्य नहीं है जो चोर न कर सके।
१३. चोरी के कारण मनुष्य अपने बंधुजन, इष्ट-मित्र तथा सेवक आदि आश्रितजनों को महान संकट अपयश और भीषण दुःख में ला पटकता है।

१४. जो धन (गाय, घोड़ा, भैंस आदि), धान्य (गेहूँ, जौ आदि), सोना और क्षेत्र आदि का उपयोग (जितने से काम चल सके) जानकर परिमाण सीमित कर लेता है वह पाँचवें अणुव्रत (परिग्रह परिमाणानुव्रत) का धारण करनेवाला है।
१५. परिग्रह त्याग इन्द्रियों को वश में करने हेतु उसी प्रकार सफल होता है जैसे हाथी के वशीकरण के लिए अंकुश। अपरिग्रह इन्द्रियों के गोपन का वैसा ही सफल उपाय है जैसा नगर की रक्षा के लिए खाई।
१६. क्षमा से क्रोध को, मार्दव से मान को, आर्जव से माया को और संतोष से लोभ को इस प्रकार चारों कषायों को जीतो।
१७. क्रोध से मित्र भी शत्रु हो जाता है। क्रोध से धर्म का नाश हो जाता है। क्रोध से राज्य खत्म हो जाता है। क्रोध के अधीन होकर मनुष्य अपने प्राणों को गँवा देता है।
१८. अभिमानी मनुष्य कलह, भय, वैर और अपमान को प्राप्त करता है। अभिमानी से सभी द्वेष करते हैं।
१९. जैसे ईंधन से अग्नि की तथा सैकड़ों नदियों से समुद्र की तृप्ति नहीं होती उसी प्रकार त्रैलोक्य की सम्पत्ति प्राप्त हो जाने पर भी लोभग्रस्त जीव को तृप्ति/सन्तोष नहीं होता।
२०. यदि खूब सुख की इच्छा है तो हे जीव, सन्तोष कर। सूर्य को छोड़कर और कौन कमलों को आनन्द देगा ?

२१. जूआ खेलने से अंधा हुआ मनुष्य न इष्टमित्र को गिनता है, न गुरु को और न माता-पिता को। वह अनेक पापात्मक कार्यों को करता है।
२२. शराब के अधीन होकर मनुष्य अत्यन्त निन्दनीय काम करता है। जिससे वह इस लोक में और परलोक में भी अनंत दुःखों को प्राप्त होता है।
२३. मांस खाने से दर्प (एक प्रकार का उन्माद) बढ़ता है उससे वह शराब पीना चाहता है और फिर वह जूआ खेलने में आसक्त हो जाता है, इस प्रकार वह सभी दोषों में फँस जाता है।
२४. इस संसार में जो दुर्लभ मनुष्यत्व को प्राप्त कर विषयों में रमण करते हैं वे दिव्य-रत्न को पाकर राख पाने के लिए उसे जलाने जैसा प्रयत्न करते हैं।
२५. जन्म मरण से सहित है, यौवन जरासहित (बुढ़ापा) है, लक्ष्मी विनाशसहित है, इस प्रकार सब पदार्थ क्षणभंगुर हैं, ऐसा जानिए।
२६. शीलवान को भी मरना है और शीलरहित को भी जरूर मरना है, यदि दोनों को ही मरना है तो फिर शील के साथ ही मरना अच्छा है।
२७. आगम में आहार, औषधि, शास्त्र (ज्ञान) और अभय - इन चार प्रकार के दानों का निर्देश किया गया है। इसलिए इन्हें जरूर देना चाहिए।

२८. बहुत सम्पत्ति से भी क्या यदि वह कृपण के घर गयी।
समुद्र में अथाह जल भरा है पर उसका पानी कोई नहीं
पीता।
२९. जैसे क्षुधा को नष्ट करने के लिए अन्न होता है, जिस तरह
प्यास को नष्ट करने के लिए जल है वैसे ही विषयों की
भूख तथा प्यास को नष्ट करने के लिए ध्यान है।
३०. जैसे मनुष्य के रोगों की चिकित्सा करने में वैद्य कुशल
होता है वैसे ही कषायरूपी रोगों की चिकित्सा करने में
ध्यान कुशल होता है।
३१. हे जीव, तुम पहले अनेक जन्मांतरों में कुमरण से मरे हो।
अब तो जरा-मरण के विनाश करनेवाले सुमरण की
भावना भावो।
३२. सिद्ध परमेष्ठी, उनकी प्रतिमा, आचार्य और सर्व साधुओं
की तीव्र भक्ति ही संसार के उच्छेद करने में समर्थ हो
सकती है।
३३. विद्या भी भक्तिमान को ही सिद्ध होती है और फल देती
है तब फिर भक्तिरहित मनुष्य को निर्वाण के बीज रत्नत्रय
की कैसे सिद्धि हो सकती है?
३४. जिन-भक्ति अकेली ही दुर्गति के निवारण करने में समर्थ
है। वह प्रचुर पुण्य को उत्पन्न करती है और मुक्ति की
प्राप्ति तक सुखों का कारण बनी रहती है।

३५. स्वाध्याय ध्यान में और ध्यान स्वाध्याय में कारण है तथा ध्यान और स्वाध्याय की सम्पत्ति से आत्मा परमात्मा बन जाता है।
३६. जैसे सूत (धागा) सहित सूई कूड़े में गिरकर नष्ट नहीं होती, वैसे ही शास्त्र, स्वाध्याय-युक्त मनुष्य प्रमाद के दोष से नष्ट नहीं होता।
३७. विनयरहित मनुष्य की सारी शिक्षा निरर्थक है। विनय शिक्षा का फल है और विनय के फल सारे कल्याण हैं।
३८. विनय से विवर्जित मनुष्यों के सकल गुण नष्ट हो जाते हैं। बिना पानी के सरोवर में कमल किस प्रकार रह सकते हैं!
३९. इस संसार में सज्जन के समागम से अधिक दुर्लभ कोई नहीं है। क्योंकि जो बोधि अनेक जन्मों में प्राप्त नहीं होती वह उसके (सज्जन समागम के) द्वारा प्राप्त हो सकती है।
४०. दुर्जन की संगति से सज्जन भी निश्चय ही अपने गुणों को छोड़ देता है, जैसे जल अग्नि के संसर्ग से अपने शीतल स्वभाव को छोड़ देता है।
४१. जिनकी दुष्टों के साथ संगति होती है उन लोगों के गुण भी नष्ट हो जाते हैं। इसलिए ठीक ही कहा है कि लोहे के साथ मिली हुई अग्नि भी हथोड़ों के साथ पीटी जाती है।

४२. सज्जनों के बीच अच्छे लोग अपने गुणों को अपनी वाणी से नहीं अपितु अपने कार्यों से प्रकट करते हैं। अपने गुणों की प्रशंसा नहीं करते हुए वे मनुष्य लोक में सबसे ऊपर उठ जाते हैं।
४३. सज्जन पुरुष लोगों में अपने विद्यमान गुण की प्रशंसा सुनकर लज्जित हो जाता है तब वह स्वयं ही अपने गुणों की प्रशंसा कैसे कर सकता है!
४४. गुण और दोषों के समूह में साधु लोग गुणों को ग्रहण करते हैं, जैसे दूध और जल में हंस केवल दूध को ही खेंच लेता है।
४५. जो दूसरे के तुच्छ गुण में भी ज्यादा अनुराग करता है, किन्तु अपने महान गुण में भी जिसे संतोष नहीं होता है, जिसका मनोविवेक ऐसा है उस सज्जन के यहाँ हित के लिए प्रार्थना करने की जरूरत नहीं है।
४६. जो-जो कार्य स्वयं अपने लिए अनिष्ट है, वह-वह वाणी, मन और क्रिया से स्वप्न में भी दूसरों के लिए नहीं करनी चाहिए। धर्म का प्रधान लक्षण यही है।
४७. पाँच इन्द्रियों के नायक मन को वश में करो, क्योंकि ऐसा करने पर दूसरी सब इन्द्रियाँ वश में हो जाती हैं। ठीक ही है, मूल के समाप्त होने पर श्रेष्ठ वृक्षों के पत्ते भी अनिवार्य रूप से सूख जाते हैं।

४८. अन्याय से लक्ष्मी आ तो जाती है पर धरी (रोकी) नहीं जा सकती। उन्मार्ग से चलनेवाले का पाँव काँटे से भग्न होता ही है।
४९. जीव अपने शुभ और अशुभ कर्मों का कर्ता है, क्योंकि वही उनके फल का भोक्ता है।
५०. सम्पूर्ण कर्मों का क्षय होना ही जिनशासन में मोक्ष कहा गया है। उसी के प्राप्त होने पर यह जीव अनंत सुख का अनुभव करता है।
